आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 4/दिसंबर 2022
Received:07/11/2022; Accepted:18/12/2022; Reviewed: 14/12/2022; Published:24/12/2022

हिंदी पत्रकारिता और बाजारवाद

डॉ. स्वामी राम बंजारे सरल
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग
भा प्र दे शास स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कांकेर (छत्तीसगढ़ - 494334
मो नं 9425259879
मेल आई डी: swamiram43@gmail.com

डॉ. स्वामी राम बंजारे सरल, "हिंदी पत्रकारिता और बाजारवाद" , आखर हिंदी पत्रिका, खंड2/अंक 4/दिसंबर 2022, (263-269)

पत्रकारिता का प्रारंभिक युग त्याग और समर्पण का युग रहा है। इस त्यागी पीढ़ी के पत्रकार असत्य एवं अन्याय के खिलाफ अडिग थे इसलिए उन्होंने लंबा संघर्ष किया। उस संघर्षशील पीढ़ी के पत्रकारों ने अपने मन और मस्तिष्क को स्वतंत्र आदर्शोन्मुखी विचार के प्रति समर्पित रहकर पत्रकारिता से संबद्ध हर छोटे-बड़े कार्य का सहज अनुभव प्राप्त करके अपने पत्रकारिता के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व की गरिमा एवं विश्वसनीयता को बनाए रखा। इस पीढ़ी के कर्मठ पत्रकारों ने पत्रकारिता को कभी व्यवसाय नहीं समझा, इसीलिए समाचार पत्र लोकमत के संरक्षक सहायक एवं पथ प्रदर्शक बने। सत्य की प्रतिष्ठा के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने का वैसा उत्साह एवं निष्ठा का भाव अब पत्रकारिता में नहीं रहा।

मुद्रण कला के विकास ने पत्रकारिता को नया मोड़ दिया, इसमें एक तरह की गति आई, क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, इसका प्रमुख कारण तकनीकी एवं औद्योगिक विकास होना है। इसके स्वरूप में विविधता किंतु निष्ठा और लगन का ह्रास हुआ है। आचार्य नरेंद्र देव ने लिखा है कि "जब जनता साक्षर हो जाती है तो समाज में कुछ ऐसे समाचार पत्रों का भी आविर्भाव होता है जिनका उद्देश्य जनता को शिक्षित करना नहीं बल्कि अपनी अर्थ सिद्धि होता है। वह प्रेम, हत्या तथा अन्य अपराधों के उत्तेजनापूर्ण और सनसनीदार समाचार प्रकाशित

करते हैं और इस प्रकार मनुष्य की दुष्ट प्रवृत्तियों को जगा कर वे अपने घृणित स्वार्थ साधन करते हैं। ऐसे पत्रों को भयंकर प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है इससे मानव प्रकृति का पतन होता है ना कि उत्थान। जन शिक्षा में उसकी कोई रुचि नहीं होती और ना उसका उद्देश्य होता है। यह मानव प्रकृति की कमजोरी से अपने राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते हैं। पूंजीपति लोगों के हाथों में पत्रकारिता चले जाने से प्रामाणिकता स्पष्टवादिता एवं सत्यनिष्ठा भी प्रभावित हुई है। औद्योगिक युग का यह सबसे बड़ा अभिशाप है की पत्रकारिता छद्म सत्य की वकालत कर रही है। पत्र कुछ खास व्यक्तियों, परिवारों, वर्गो या दलों के हाथों में है और पत्रकार उसके वेतन भोगी कर्मचारी मात्र रह गए हैं। जब हम देखते हैं कि कुछ पत्र पूंजीपतियों के हाथ में है, कुछ पर पार्टियों का अधिकार है, कुछ पार्टी के गुट विशेष से प्रभावित हैं, कुछ की नीति सरकार और विज्ञापनदाताओं के नाराज होने के भय से लीक से इधर से उधर नहीं हट पाती और कुछ केवल सनसनी, उत्तेजना और मनुष्य की हिंसा प्रवृत्तियों का आधार लेकर निकलते हैं तो समझ में नहीं आता की पत्रिका पत्रकार का और पत्रकारिता का कोई एक सामान्य आदर्श धर्म और स्वरूप कैसे माना जाए। आज भी हम पत्रों को चतुर्थ स्तंभ का नाम दे रहे हैं किंतु चतुर्थ सत्ता तो अपने आप में विभाजित है। "आज पत्रकारिता के शब्द मोहभंग के प्रतीक बन गए हैं। शब्दशक्ति अपने मूल अर्थ खो चुकी है, शब्दों के माध्यम से एक आदर्श पूर्ण समाज के श्रेष्ठ की बात करना एक अलग बात है और आदर्श को पोषित कर उन आदर्शों पर चलना दूसरी बात है।"1 इस तरह लगता है कि पत्रकारिता की कर्तव्यनिष्ठा कमजोर हो गई है, क्योंकि लोकतंत्र की राजनीतिक व्यवस्था ने अपने तात्कालिक स्वार्थ को महत्वपूर्ण हथियार बना डाला है। पत्रकारिता देश की तस्वीर को कभी खुलकर प्रकट करती थी पर अब वह कर नहीं सकती। किसी समय पत्रकारिता का लक्ष्य सेवा और त्याग का रास्ता होता था किंतु आज वह आदर्शपरक न होकर स्वार्थपरक होकर रह गया है। कभी पत्रकारिता जुनून थी, इसमें आदर्श और मूल्यों का स्थान होता था पर आज यह लगभग अप्रासंगिक से हो गए हैं।

यह भूमंडलीकरण का दौर है जहां बाजारवाद अपनी चरम अवस्था में परचम लहरा रहा है। मानवीय मूल्यों का व्याकरण बराबर बदल रहा है। इसका फायदा लगातार बाजारवाद उठा रहा है। बाजार और बाजारवाद में घनीभूत अंतर है। बाजारवाद एक वृत्ति है, जो जीवन को जीवन के मूल्यों से अलग करने का काम करती है, जहां भ्रांति ही एक पराकाष्ठा बन गई हो, वहां निश्चित तौर पर विकल्पों की भीड़ दिखाई देती है। यह भीड़ जीवन के पारंपरिक वितान को भाड़ में झोंकने के लिए व्यापक भूमिका का निर्वहन करती हैं, ऐसे समय में मानवीय मूल्यों को बचाने के लिए अभिव्यक्ति के सामाजिक लोकवादी चेतना को जागृत करना बहुत जरूरी काम है। यह काम पत्रकारिता अपने युग अनुरूप करते आई है। पत्रकारिता को जिस पक्षधरता की जमीनी ताकत मिलती है उसी के साथ खिलवाड़ करना कहां तक जायज है, यह सोचने का विषय है। आज पत्रकारिता अपनी ईमानदारी से दूर एक ठगी हुई समझदारी बनकर रह गई है। आज बौद्धिकता की नीलामी पत्रकारिता की आवश्यकता बन गई है। आज के समय में पत्रकारिता को बाजारवाद की जड़ों में परखना आवश्यक है।

पत्रकारीय मूल्य समाजपरक होने चाहिए लेकिन आज पूरी दुनिया भूमंडलीकरण, पूंजीवाद और बाजारवाद की चपेट में है। आधुनिकता एक बड़ा जीवन मूल्य है। समय में जीवंतता का विराट स्वर आधुनिकता की गहनता से आता है। पत्रकारिता भारतीय परिदृश्य में एक अदम्य जीवटता के साथ उभरी थी, इसमें मनुष्यता के प्रश्न, उनके हित शामिल थे। स्वतंत्रता की लड़ाई में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान था। प्रारंभिक दौर में जन माध्यमों के अभाव में भारतीय पत्रकारिता ने वह सब कुछ किया जिसे आज याद किया जा सकता है। तब मीडिया निजीकरण का शिकार नहीं थी। आर्थिक अभाव के युग में मूल्यों की वैज्ञानिकता का एक इतिहास भारतीय पत्रकारिता ने रचा। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में राजसत्ता के समर्थन से निकलने वाले पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति तो आर्थिक रूप से समृद्ध थी लेकिन स्वतंत्र पत्रकारिता के जुनूनी पत्रकारों को आए दिन आर्थिक और राजनीतिक संकट की मार उन्हें घायल करती रहती थी। उस दौर में पत्रकारों को पुरस्कार के रूप में सजाएं मिला करती थी। पत्र-पत्रिकाओं पर जुर्माना ठोके जाते थे, बुद्धिजीवियों पर वारंट काटे जाते थे, रचनाएं जब्त कर ली जाती थी। यह वह दौर था जब पत्रकारिता चंदे से चलती थी। उस दौर की पत्रकारिता में मूल्यों का विकास दिखाई देता है। अंग्रेजी सत्ता से असंतुष्ट वर्ग की मजबूत आवाज बनकर पत्रकारिता का विकास भारत में हुआ। पहले अंग्रेजी में पत्र निकले, फिर बंगला में और हिंदी में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता की भरपूर आवाज सुनाई पड़ने लगी। हिंदी का प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' कोलकाता से 1826 में पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में निकला, उसके बाद संपूर्ण भारत से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का एक सिलसिला चल पड़ा। हिंदी पत्रकारिता दिन-प्रतिदिन अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई। इस दौर के संपादक और लेखक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों से जनता को रूबरू करा रहे थे। धार्मिक रूढ़ियों से समाज को मुक्त करने के पक्षधर थे। इस दौर की बड़ी उपलब्धि है प्रताप नारायण मिश्र के संपादन में निकलने वाले पत्र 'ब्राह्मण 'में छपी एक टिप्पणी, इसे देखकर समझा जा सकता है: --"सरस्वती तो हमारे पेट में बसती है जो सबका सर्वस्व हमारे पेट में हंस-हंसकर ना भरे वह नास्तिक जो हमारी बेसूरी तान पर वाह! वाह! ना किए जाए वह क्रिस्तान और हम से जो चूं भी ना करें वह दयानंदी।"2 इस तरह की बेबाक प्रतिक्रिया मूल्यों के साथ हिंदी पत्रकारिता का विकास हुआ था। पत्र आर्थिक संकट से गुजरने के बावजूद अपनी संपूर्ण तत्परता से सामाजिकता के पद पर मनुष्यता के हित और अधिकारों की लड़ाई लड़ रहा था। वर्तमान सत्ता से लगातार टकराता रहा, यह इसकी जीवटता का प्रतीक है।"3 भारतीय पत्रकारिता के जीवन मूल्य क्या थे इसका एक उदाहरण बालकृष्ण भट्ट के संपादन में निकलने वाले 'हिंदी प्रदीप' में भी देखा जा सकता है। यह पत्र भारतीयता की अटल आकांक्षाओं के लिए लड़ता हुआ जुर्माने की मार से बंद हुआ। "हिंदी प्रदीप' हिंदी का एक ऐसा पत्र है जिसमें एक राष्ट्रीय कविता छपने के कारण रु.3000 की जमानत ना दे पाने पर पत्र का प्रकाशन बंद कर देना पड़ा।"4 इस तरह भारतीय पत्रकारिता के जीवन मूल्यों का एक गौरवशाली

इतिहास रहा है, स्वतंत्रता के बाद भारतीयता के जीवन मूल्य में एक परिवर्तनकारी दौर की शुरुआत होती है, यह आजादी के मोह भंग के रूप में पहले कमजोर हुआ फिर जैसे-तैसे देश पूंजीवादी ढांचे में अपने को तब्दील करता चला गया, संचार मीडिया के हाथ की कठपुतली बनता चला गया। जिस तरह साम्राज्यवाद के गर्भ से पूंजीवादी व्यवस्था का उदय हुआ उसी तरह पूंजीवाद से भूमंडलीकरण का रास्ता खुला। दरअसल भूमंडलीकरण वशीकरण की एक चाल है। यह जो पूरी दुनिया को एक गांव में तब्दील कर देने की एक परिभाषा भूमंडलीकरण के पुरोधाओं ने गढ़ी है यह पूंजीवाद स्वप्न को साकार करने की एक ओछी मानसिकता है। यह विविधता के प्राकट्य को प्राकृतिक मूल्यों से अलग करना चाहते हैं, यह पूरी दुनिया को एक सूत्र में छल लेने के आकांक्षी हैं। भूमंडलीकरण का स्वप्न प्रौद्योगिकी और तकनीकी को एक कल्चर के रूप में समाज में ला रहा है। यह समाज की स्वायत्तता और निजता पर एक रणनीति के रूप में प्रहार कर रहा है। वह साम्राज्यवादी नीतियों के अनुयायी पूंजीवादी लोग हैं। आज पत्रकारिता भी इन्हीं के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है।

इधर कुछ वर्षों में बाजारवाद शब्द का चलन काफी बढ़ा है, यह एक नई चाल है। बाजारवाद एक जाल का नाम है, जो इधर तेजी से फैल रहा है। यह पूंजीवाद का एक धारदार हथियार है जो अपनी चपेट में ले कर व्यक्ति की निजता और स्वायत्तता को बेचने पर मजबूर करता है, इसका उदय दुनिया के डिजिटलीकरण के साथ हुआ है। दुनिया जिस तेजी से जिस कदर डिजिटल हुई, बाजारवाद ने उसे हथिया लिया। यहीं से पत्रकारिता के मीडिया होने की कहानी शुरू होती है, पहले मीडिया शब्द इतना प्रचलित नहीं था। आज पत्रकारिता के मूल्य जनवादी नहीं रहे, इसका बड़ा कारण डिजिटलीकरण है। आज एक पत्रकार अपनी निजता और स्वायत्तता को बेचे बिना मीडिया की दुनिया में कुछ भी नहीं कर सकता। अब पत्र-पत्रिकाओं के दिन लदते जा रहे हैं, यह समय टेलीविजन, इंटरनेट ,सोशल मीडिया और चैनलबाजी का है और सारे चैनल पूंजीपतियों के उद्योग या कारखाने हैं जहां खबरें गर्म करके परोसी जाती है, बेची जाती है। वहां विज्ञापनों की भरमार है। विज्ञापन प्रायोजित दौर को हम बाजारवाद कहते हैं, यह पश्चिम से ही आया है। पश्चिम के धनी देशों के लिए पूरब के विकासशील तमाम देश बाजार का मैदान बने हुए हैं, उनमें से भारत एक बड़ा बाजार है। जहां वह चीजों को बेचने में सफल हो रहे हैं।

बेंजामिन गिन्स बर्ग का कहना है कि "पश्चिमी सरकारों ने बाजार के कार्यप्रणाली का इस्तेमाल लोकप्रिय परिप्रेक्ष्य और भावनाओं को नियंत्रित करने में किया। विचारों का बाजार जो उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के दौरान बना था, वस्तुतः उच्च वर्गों के विश्वासों और विचारों का प्रचार और निचले वर्गों की विचारधारात्मक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता को दबाने का काम करता है। इस बाजार के निर्माण के जरिए पश्चिमी सरकारों ने सामाजिक, आर्थिक स्थिति और विचारधारात्मक शक्ति के बीच से ही किसी अन्य के पृष्ठपोषण के लिए एक दूसरे का इस्तेमाल करें- खास तौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका में विचारों के बाजार पर छाए रहने में कुछ और

उच्च मध्यवर्गों की क्षमता ने आमतौर पर इन तबकों को इस बात की इजाजत दी है कि वे समूचे समाज के राजनीतिक यथार्थ के बीच को और राजनीतिक तथा सामाजिक संभावनाओं को अपने तरीके से गढ़े। पश्चिमी लोग जहां आमतौर पर बाजार को विचारों की आम स्वतंत्रता के बराबर मानते हैं वही बाजार का गुप्त नियंत्रण के औजार के रूप में उतनी ही संभावनाएं लिए होता है जितनी राज्य की लौह भट्टी।"5

इस तरह से हम देखते हैं कि बाजार एक राजनीतिक और आर्थिक रणनीति के तहत प्रणाली के रूप में काम कर रही है। इस टिप्पणी के बारे में प्रोफेसर नोम चोमस्की लिखते हैं:-"गिन्सबर्ग के इस निष्कर्ष में कुछ प्रारंभिक सत्याभास मौजूद है। यह एक निर्देशित युक्त बाजार के कामकाज को लेकर उन तमाम प्रस्थापना पर आधारित है जो विशेषतया विवादास्पद नहीं है। संचार माध्यमों के वह हिस्से जिनकी पहुंच एक अच्छे खासे पाठक श्रोता वर्ग तक हो सकती है, बड़े निगम ही हैं और वे अपने से कहीं ज्यादा बड़े उद्योग समूहों से जुड़े हुए हैं। अन्य व्यापारियों की तरह ही वह एक उत्पाद खरीददारों को बेचते हैं। उनका बाजार है विज्ञापन दाताओं का वर्ग और उनके उत्पाद हैं पाठक, दर्शक, श्रोता इसमें भी उनका खास पूर्वाग्रह अपेक्षाकृत धनी पाठक, दर्शक, श्रोता की ओर होता है जिसके कारण विज्ञापन की दरें बढ़ जाती हैं।"6 इस तरह हम देखते हैं कि संचार माध्यम किस तरह बिकी हुई प्रणाली का प्रतिरूप है। आज उच्च वर्ग के पास एक अपना मध्यम वर्ग है जो उसके इशारे पर नाचता है। निम्न मध्य वर्ग और निम्न वर्ग लगातार इनका शिकार होता रहता है, यह ठगी का एक तंत्र है मायाजाल है। आज प्रिंट मीडिया धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोती जा रही है और इसमें जो दिखाई दे रहा है वह एक किस्म का चमकीला मुल्लम्मा बनकर रह गया है। समाचार पत्रों की जगह दिन-रात एक न्यूज़ गर्म करने वाले टी.वी. चैनलों ने छीन ली है। इधर डीटीएच, डीटूएच जैसे उपकरणों ने निम्न मध्यवर्ग पर अपना पूरा कब्जा जमा लिया है। इन चैनलों पर पूंजीवादी दुकानों का एक अंबार लगा हुआ है, जिस पर लगातार बाजारु नाटकीयता अपनी छाप इन वर्गों पर डालकर जीवन मूल्यों को तहस-नहस कर रहा है। इसके आगोश में एक भरी पूरी पीढ़ी निरापद विचार शून्यता में जी रही है और यही वह पीढ़ी अपने वर्ग के साथ चुनाव में बड़ा हिस्सा बनकर उभरती है। आज वार्ड मेंबर से लेकर प्रधानमंत्री का चुनाव यही जनता कर रही है जो विचार शून्यता के भयावह रोग से ग्रसित है। अब चुनावी माहौल चैनल बनाते हैं। भारत के 2014 और 2019 के लोकसभा चुनाव इन्हीं टी.वी. चैनलों द्वारा लड़े गए, इसी तरह तैयार की गई जनता ने पक्ष के प्रतिपक्ष के लिए विपक्ष की जगह नहीं छोड़ी। देश की सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस, जिनका देश की आजादी में योगदान था 44 और 50 सीटों पर सिमट गई। यह सब एक बनी बनाई रणनीति के तहत हो रहा है। टी.वी. चैनलों का कोई भी जनपक्ष, धर्म मूल्य, नहीं बचा है । अखिलेश अखिल के शब्दों में कहें तो पत्रकारिता वेश्या बन गई है और पत्रकार बन गए हैं दलाल। वेश्या बनी पत्रकारिता खूब बिक रही है उनका यह नारा बुलंद है जो बिकेगा वो टिकेगा। लोगों के बीच इसकी काफी मांग है, ऐसी पत्रकारिता के दलालों की खूब चल रही है, पाठकों के बीच इन दलालों की इज्जत है, समाज में इनकी प्रतिष्ठा है रौब है।"7

उच्च जीवन स्तर और भौतिक समृद्धि की शिखर को छू लेने वाली स्पर्धा ने आज विश्व भर को बाजार में लाकर खड़ा कर दिया है। हमारे राष्ट्रनायकों को इस बात का डर है कि कहीं विश्व के बड़े लोकतंत्र के सत्तात्मक इतिहास के पृष्ठों में उनका नाम नहीं आया तो भविष्य हमारे नायकवाद की सूचना तक नहीं लेगा, इसलिए विश्व व्यापार के अधिनायक द्वारा निर्धारित मापदंडों को स्वीकार करने की तत्परता ने आज देश को भूमंडलीकरण के स्तर पर बहुराष्ट्रीय संस्थानों के उपभोगता के रूप में तब्दील कर दिया है। परिणामस्वरूप मात्र उपभोक्ता रह गए हैं, बाजार में खड़े हैं और पश्चिमी समाज की चमक दमक एवं भौतिकता के प्रति अपनी तृष्णा और आत्म सुखों की सलिला में प्रवाहित होने के लिए तत्पर हैं। बाजारवाद के कारण ही आज पत्रकार निष्पक्ष नहीं रह पाता। ग्लोबल मीडिया ने हमारी जिंदगी को बदल दिया है और बाजार के दबाव में राष्ट्र में असहमति की आवाज को दबाने के लिए ही पत्रकारिता का चरित्र बदलकर हाजिर हुआ है।

आजादी के पहले जिन मूल्यों की तलाश में आम आदमी ने संघर्ष किया वही मूल्य आजादी के बाद और अधिक विघटित हो गए हैं। आम आदमी के पास तकनीक आने के बाद, उसने अपने लिए विकल्पों की स्वयं ही खोज कर ली है, उसने तकनीक को ही अपनी आवाज अभिव्यक्ति का हथियार बनाया है। जरुरत इस बात की है कि बाजारवाद के आगे नत मीडिया से बचकर मूल्यवादी पत्रकारिता के मीडिया को आधार दे सकें। पेड न्यूज़, बाजारवाद और भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा है। अखबार के अंत:करण का स्वामी आज पैसे लेकर खबर छापता है, केवट पैसे लेकर पार उतारता है, यह बाजारीकरण की पराकाष्ठा है। हिंदी पत्रकारिता कभी व्रत हुआ करती थी अब वृत्ति बन गई है। इसमें वित्त की विकृति भी आ रही हैं। सदियों पहले किसी महानुभाव ने पेट को पापी कह दिया, आज तक पेट ऐसा विलेन बना बैठा है कि उसे भरने की हर जगह, पाप की श्रेणी में आ जाती है, भले ही पेट केवल एक अंग है, जहां चटोरी जीभ से होकर खाना पहुंचता है और शरीर के बाकी अंगों तक जरूरी रसायन को निचोड़ कर पेट ही भेजता है। कहने का तात्पर्य यह कि हमारी दुनिया में किसी भी चीज को लेकर एक सोच बन जाती है और फिर उस लेबल को हटा पाना नामुमकिन सा हो जाता है ऐसा ही एक लेबल बाजार के माथे पर चस्पा है। मीडिया समाज का चौथा स्तंभ होने के साथ-साथ एक व्यवसाय भी है। मीडिया स्कूलों से निकलने वाले छात्र समाज सुधार के साथ-साथ रोटी भी कमाना चाहते हैं। मीडिया का विस्तार बाजारवाद के दौर में ही संभव हो पाया है, मीडिया के विस्तार से मीडिया की आजादी बड़ी है और जहां खबरें बाजार के मिजाज से लिखी जाती हैं, जहां स्पॉन्सर के पैसों की खनक आवाज की धमक तय करती है। मीडिया पर बाजारवाद हावी हो चुका है। मीडिया एक ऐसा थानेदार है जिसकी खबर लेने वाला कोई नहीं है।

सहायक संदर्भ ग्रंथों की सूची:

01. डॉ महासिंह पूनिया, पत्रकारिता का बदलता स्वरूप, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृष्ठ संख्या 197 -198

02. श्रीधर विजय, भारतीय पत्रकारिता कोश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2010, पृष्ठ संख्या 337

03. वही, पृष्ठ संख्या 258

04. नोम चोमस्की, जन माध्यमों का माया लोक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली 2006, पृष्ठ संख्या 17

05. वही, पृष्ठ संख्या 17 -18

06. अखिल अखिलेश, मीडिया वेश्या या दलाल, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली 2009, पृष्ठ संख्या 229

****